शिक्षा यात्रा: आत्मखोज की प्रक्रिया

चंदेश मानव

साथियों! मैं एक यात्रा पर ले जा रहा हूं। ऐसी यात्रा जहां कुछ लोग जाना पसंद नहीं करते और कुछ लोग हैं जिन्हें इसके बारे में पता भी नहीं है। कुछ लोग हैं जो इस यात्रा पर जाकर आए हैं पर चुप हैं। कुछ लोग इस यात्रा के बाद क्रांतिकारी परिवर्तन की ओर अग्रसर हो रहे हैं। इस यात्रा पर वही जा सकते हैं जो खुद को विमुक्त करना चाहते हों और जिनमें अपनी कल्पना की उड़ान भर नए सपनों को देखने की हिम्मत है। इस यात्रा में हम समझने की कोशिश करेंगे कि–

- कैसे सामाजिक, आर्थिक, राजकीय और शैक्षणिक ढांचों के विश्लेषण से अमानवीय कृत्य हो रहे हैं।
- शिक्षा एवं विकास की सीमित और अनन्य सोच के कारण आज हमारा समाज तथाकथित आधुनिकीकरण की ओर बढ़ रहा है।
- उन प्रक्रियाओं को खोजने की कोशिश करेंगे जिससे सृजनात्मक और न्यायपूर्ण समाज की

रचना हो।

दोस्तों! राममूर्ति कमीशन की रिपोर्ट (1990) के अनुसार आज भी हमारी शिक्षा प्रणाली उन्हीं नीति-नियमों, उद्देश्यों और मूल्यों पर आधारित है जो ब्रिटिशों ने बनाए थे। अगर हम नई शिक्षा की बात करना चाहते हैं तो सबसे पहले हमें नए विकास की परिकल्पना करनी होगी। यह यात्रा स्कूली शिक्षा एवं साक्षरता के परे आजीवन शिक्षा एवं सीखने की तृप्ति को उजागर करके उसे जीवन के साथ पुनः जोड़ने की प्रक्रिया है।

यात्रा का प्रथम पहलू: गुलाम बनाने की व्यवस्था

एक दिन अकबर ने बीरबल से पूछा कि, "प्रजा की मानसिकता को कैसे जाना जा सकता है?" तब बीरबल ने कहा कि "महाराज! ज्यादातर प्रजा की मानसिकता एक जैसी ही बनाई गई है। "इसका क्या मतलब है?"—अकबर ने पूछा। बीरबल बोले कि, "जहांपनाह! लोगों को हर चीज पर एक ही तरह से सोचना एवं प्रतिक्रिया करना सिखाया गया है, इसलिए ज्यादातर लोगों की मानसिकता एक जैसी ही हो गई है। इसे जानने के लिए एक प्रयोग कर सकते हैं। यह ऐलान किया जाए कि राज्य में पानी के साथ-साथ एक दूध का भी कुंड होना चाहिए।" अकबर ने ऐलान करवाया कि हर व्यक्ति एक लोटा दूध महल में बने कुंड में डाले। दूसरे दिन प्रत्येक व्यक्ति एक लोटा भर कुंड में डालने लगा। शाम को जब अकबर कुंड देखने गए तो पूरा कुंड पानी से भरा पड़ा मिला। जब पूछताछ हुई तो यह पता चला कि हर व्यक्ति यह सोचकर पानी का लोटा भर लाया था कि, "सब लोग दूध डालेंगे अगर मैं एक लोटा पानी डालूंगा तो क्या फर्क पड़ जाएगा।"

इस लघु सोच के कारण हम बेईमान और भ्रष्टाचारी हो रहे हैं। आज यह स्थिति है कि कोई जिम्मेदारी लेना नहीं चाहता है। क्या हर व्यक्ति प्राकृतिक रूप से ऐसे ही सोचता है या ऐसी सोच बना दी जाती है? शायद आज हमारी सोच इतनी संकुचित, रूढ़िग्रस्त और ओछी बना दी गई है कि हम जीवन को केवल उपभोग करने का साधन मानकर केवल उपभोगी बन रहे हैं और यह कमाल किया है हमारे "ढांचे ने"। ढांचा, जिसने बांध रखा है हमारे सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक और शैक्षणिक मूल्यों को। इसे थोड़ा और गहराई से समझते हैं। लोगों को दबाना, शोषित करना, सारे संसाधन पर कब्जा करना, गुलाम बनाना—शारीरिक एवं मानसिक रूप से और हिंसा से लोगों पर राज करने के लिए आवश्यक है ऐसी व्यवस्था की जो इन उद्देश्यों की पूर्ति करे। खैर, जब यह कटु विचार हमारे दिलो दिमाग पर छा जाता है तब क्या होता है हम जानते हैं और तभी जन्म हुआ उपनिवेशवाद का। विश्व एवं प्रकृति पर राज करने के हेतु कुछ लोगों ने गहरे षड्यंत्र रचाए जिससे महत्तम लोग एवं संसाधन उनके कब्जे में रहे। ऐसी व्यवस्था जिसमें 100 में से मुश्किल से 10 लोग इस पर शासन करें और शेष लोगों को दबाए एवं शोषण करे। जिसका परिणाम यह है कि आज विश्व में 20 प्रतिशत लोगों के पास 80 प्रतिशत संसाधान हैं और 80 प्रतिशत लोगों के

पास 20 प्रतिशत भी संसाधन नहीं हैं। इन 20 प्रतिशत लोगों का प्रयास हर समय यही रहता है कि कैसे इस 80 प्रतिशत लोगों को दबाए और शोषित करे और दूसरी ओर 80 प्रतिशत लोगों का प्रयास हरदम यह होता है कि कैसे इस 20 प्रतिशत में शामिल हो जाए। यानी आज जो उत्पीड़ित है वह यह सोच रहा है कि कैसे वह कल अत्याचारी बने।

जब इस अत्याचारी व्यवस्था में जबरदस्ती गुलामी लाना मुश्किल सा हो गया तब 'फर्ज' और 'कर्तव्यों' के हथियार का उपयोग किया गया। पांच-पचीस लोग मिलकर यह तय करते हैं कि हमें क्या सोचना और कैसे सोचना है, हमें क्या करना और कैसे करना है, हमें किस धर्म का अनुसरण करना है और किस धर्म को गाली देनी है एवं नीचा दिखाना है इत्यादि। यही लोग मिलकर नियम, कानून, संविधान वगैरा बनाते हैं और हमें केवल इन सबका पालन करना होता है। हम इस व्यवस्था को चुनौती एवं इसके खिलाफ प्रश्न नहीं उठा सकते। ऐसा करने से या तो हमें सजा मिलेगी या फिर हमें नक्सलवादी, देशद्रोही और पागल घोषित कर दिया जायेगा।

एक और खास बात यह है कि इस ढांचे को बिठाने वालों ने विकास की परिभाषा भी बड़ी सोच-समझकर की है। आधुनिकीकरण एवं प्रौद्योगिक पृष्ठी, उदारीकरण, शहरीकरण और सैन्यीकरण ही विकास है। यानी केवल बड़ी सड़कें, बड़ी फैक्टरी, बड़ी इमारतें, बड़े बांध, बड़े बम, बड़े-बड़े स्कूल आदि बनाना ही विकास है। 1945 में ट्रूमेन ने विकसित और अविकसित देश की परिभाषा दी जिसमें यह कहा कि वही देश विकसित है जिसके पास अधिक धन है और जो ज्यादा संसाधनों का उपभोग कर सके। जिनके पास यह नहीं है वह अविकसित है। आज जो तथाकथित विकसित देश है वह मानते हैं कि अब उनके ऊपर यह बोझा है कि जो अविकसित देश है (जिनके पास अभी भी प्राकृतिक संसाधनों का खजाना है जिसे वह तथाकथित विकसित देश उपभोग कर सकते हैं) उनके लागों को 'सभ्य' नागरिक बनाए (ताकि उनका और शोषण कर सकते है)। जो देश खुद को अविकसित मानते हैं वह इन 'विकसित' देशों का अंधा अनुकरण करके उनके जैसा बनने का प्रयास कर रहे हैं। जितने ज्यादा हम ऐसे व्यर्थ प्रयास करेंगे उतने ज्यादा हम हास्यप्रद और बेवकूफ नजर आयेंगे।

इन लोगों ने एक-एक कदम बड़ी चतुराई से रखे हैं पहले हमें लूट कर, हिंसा कर बरबाद कर दिया, दंगे कराकर मानवीय मूल्यों का उपहास किया और अपनी जड़ों को मजबूत करने के लिए खोखले 'फर्ज' का सहारा लिया। मानव के साथ-साथ प्रकृति पर राज करने की चेष्टा की गई। यह माना जाता है कि मनुष्य प्रकृति का हिस्सा एवं देन है। पर यह बड़े दुःख की बात है कि आज हम उसी प्रकृति से दूर जा रहे हैं और उससे खिलवाड़ कर रहे हैं। जिस प्रकृति को बनने में करोड़ों वर्ष लगे उसे हम कुछ ही वर्षों में नष्ट कर देंगे। बड़ी पीड़ाजनक बात है कि हम विरक्त बन गए हैं और यही सोच रहे हैं कि–

क्या फर्क पड़ता है
अगर कल विश्व एक रण बन जाए तो

क्या फर्क पड़ता है
अगर हम गुलाम हैं तो
दुनिया तो फिर भी चलेगी
क्या फर्क पड़ता है
अगर किसी ने किसी को लूट लिया
क्या फर्क पड़ता है
अगर कोई शोषित हुआ तो
दुनिया तो फिर भी चलेगी
सब चलता है यार
सब चलता है!

हम अपनी विरक्ति और उदासीनता को 'फिर भी दिल है हिंदुस्तानी' और 'ऊपर-वाला सब संभाल लेगा' जैसे छिछोरे नारों के नशे की आड़ में ढकने का ढोंग रचाते हैं।

दूसरा पहलू : गुलामी का सबूत-Crisis of the Schooled

चलिए यात्रा का रुख मोड़ते हैं और मिलते हैं उन 'शिक्षित' आजाद लोगों से जिनके हाथ, पैर और मुंह इस ढांचे ने बांध रखे हैं। आज बड़े अभिमान से उनकी आवाजें चारों ओर गूंज रही हैं और कहती हैं कि–

- "इस सिस्टम को हम नहीं बदल सकते, हमें तो इसमें किसी भी तरह फिट होना ही होगा। जो लोग फेल हो जाते हैं वह तो आलसी और निकम्मे हैं।"
- "मेरी जिंदगी का मकसद केवल पैसा कमाना, किसी भी तरह झूठ बोल कर, धोखा देकर या मार कर और ऐश करना है। बहुत पैसे वाले ही अच्छे इंसान होते हैं। हमारे देश में क्या रखा है, मुझे तो बाहर जाना है।"
- "मेरे से एक लड़की नहीं पटती है, इसलिए टेंशन के मारे सिगरेट पी रहा हूं। जिंदगी एक सिगरेट है धुएं की तरह उड़ जाएगी।"
- "मुझे भारत पाकिस्तान का युद्ध तो एक क्रिकेट मैच के जैसा लगता है जिसे टी.वी. में पेप्सी पीते हुए देखने में मजा आता है।"
- "मैं तो शिक्षित हो चुका हूं इसलिए मेहनत का काम नहीं कर सकता। मुझे तो केवल टेबल-कुर्सी वाली नौकरी ही करनी है। मुझे तो कलेक्टर बनना है ताकि सब पर राज कर सकूं।"
- "पश्चिमी देशों का अनुकरण करेंगे तभी हम आगे बढ़ पाएंगे। अपनी भाषा और संस्कृति को पकड़ के रखेंगे तो केवल असफलता ही प्राप्त होगी क्योंकि यह तो बेकार है।"
- "मुझे सुंदरता प्रतियोगिता (beauty contest) में भाग लेना है इसलिए डाइटिंग पर हूं। भारत ने कितनी तरक्की की है, पिछले 10 सालों में 3 विश्व सुंदरियां बनाई हैं।"
- "हमारे मां-बाप आदर्शवादी बनकर आज भी कंगाल हैं। हमें कंगाल नहीं बनना। आज के जमाने में आदर्श नहीं ताकत चाहिए।"
- "गांधी ने तो देश को बरबाद कर दिया। देश तो डंडे और बंदूक से ही चल सकता है। सत्य और अहिंसा की लाठी के सहारे इस युग में जिंदा नहीं रह सकते हैं। आज तो न्यूक्लियर बम ही चाहिए।"

दोस्तों! आज हमारा ध्यान उन लोगों पर है जिन्हें हम अशिक्षित कहते हैं। हम उन्हें कलंक

मानते हैं, परंतु वर्तमान 'शिक्षित' वर्ग की सोच और कार्य को देखकर लग रहा है कि हमें पुनर्विचार करना होगा की अशिक्षित कौन है, कलंक कौन है और किसको सुधारना है।

आज जिन्हें हम 'शिक्षित' कहते हैं वही सबसे ज्यादा हिंसात्मक और भ्रष्टाचारी हो रहे है। ढिंढोरा पीट रहे हैं कि, "मैं शिक्षित हूं, मैं सब कुछ जानता हूं और मुझे सबकुछ आता है।" डार्विन के नियम Survival of the fittest को अच्छी तरह से रट लिया है। "केवल छीन कर या फिर लूट कर ही जिंदा रह सकते हैं। कोई मुझे मारे इससे पहले मैं उन्हें मार दूं।" लगता है कि इनका आत्मविश्वास ही मर गया है—अपने आप कुछ भी सोच नहीं सकते, सिर्फ दूसरों के आदेशों पर ही काम कर सकते हैं। बड़े आज्ञाकारी गुलाम बन गए हैं। केवल निजी स्वार्थ को ही पूरा कर सकते हैं। इतने कुंठित हो गए हैं कि आदर्श अब इनके लिए एक अभिशाप और गाली के समान हैं। नकल करना अच्छी तरह से सीख गए हैं, इसलिए पश्चिमी संस्कृति की नकल करे जा रहे हैं। सिगरेट-विहस्की तो फैशन है, नहीं पीने से स्टेटस डाउन हो जाएगा।

डरते हैं कि कल क्या होगा इसलिए हर वक्त असुरक्षा की भावना दिलो-दिमाग में छाई रहती है। कहते हैं कि सफल होने के लिए लालच और जलन जरूरी है। शायद कोई जानवर भी इतना संवेदनशील नहीं होगा। बहुत कम लोग हैं जो अपनी प्रतिभा और हुनर को जानते हैं।

आज हम सबसे ज्यादा 'सुशिक्षित' उनको मानते हैं जो उच्च वर्ग (पैसों के आधार पर) के लोग हैं। परंतु आज उनमें सबसे ज्यादा दहेज की प्रथा चल रही है। जिनके पास जितनी उच्च डिग्री और ऊंची नौकरी, उनका दाम उतना ही ज्यादा। एक और खास बात, जाति एवं वर्ग भेद की श्रेणीबद्धता उनमें सबसे ज्यादा है यानी जिनके पास ज्यादा पैसे और बड़ी डिग्रियां हैं वे भी ऐसी रूढ़िओं में दबे हुए हैं। फिर शिक्षित किसे कहेंगे?

- आज जिनको अक्षर ज्ञान से भी कुछ ज्यादा अर्थपूर्ण चाहिए उनको ये शिक्षा क्या देती है?
- वर्तमान शिक्षा हमें क्या मौका देती है अगर हम खुद को और किसी और को भी गुलाम नहीं बनाना चाहते हैं?
- आज जो लोग इस भेड़ दौड़ से बाहर आना चाहते हैं उनके लिए ये शिक्षा क्या मौका देती है?

आज भी हमारी यह आस्था है कि शिक्षा के जरिए ही हम विमुक्त हो सकते हैं। परंतु हमें यह सोचना होगा कि शिक्षा क्या और कैसी हो?

तीसरा पहलू : शैक्षिक षड्यंत्र

आइए और गहराई से देखते हैं वह शक्तिशाली हथियार जिसकी कृपा से हमारी सोच संकुचित और ओछी कर दी गई है। जब बीज बबूल का हो तो आम कैसे आएंगे। आज महत्तम लोगों का सिर्फ यही मानना है कि मैकॉले की शिक्षा का उद्देश्य केवल सरकारी बाबू पैदा करना ही था। परंतु उसके पीछे गहरे षड्यंत्र की बात कोई नहीं करना चाहता। उसका मुख्य काम तो पश्चिमी नैतिकता और बौद्धिक श्रेष्ठता की स्थापना करना था। यह सच है कि

मैकॉले ने इस शिक्षा व्यवस्था के उद्देश्य बनाए एवं इसे कार्यान्वित किया पर उसकी सोच कहीं और से लाई गई थी। इस शतरंजी चाल में मैकॉले तो केवल एक मोहरा था। असली खेल तो कोई और ही खेल रहे थे। ये जानना इसलिए जरूरी है क्योंकि इस पूरे षड्यंत्र में मुख्य उद्देश्य राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक ढर्रे को शोषित करना था। इसकी परिकल्पना में Plato, Isaac Newton, John Locke, James Mill, William Wilberforce, Thomas Hobbes, Adam Smith, Jeremy Bentham इत्यादि विद्वानों का हाथ था।[1] इनका मानना था कि भारतीय लोग बेहद गंदे, अंधविश्वासी, यूरोपी लोगों के मुकाबले बहुत कम सभ्य और गहरी अज्ञानता के अंधकार में डूबे हुए हैं।[2] इनकी इसी वैचारिक भूमिका से जन्म हुआ 'जबरदस्ती लादी जाने वाली स्कूली व्यवस्था' (forced schooling) का। मानव इतिहास में 'जबरदस्ती लादी जाने वाली स्कूली व्यवस्था' की शुरुआत प्रूशिया (Prussia) में सन् 1819 में हुई। इस व्यवस्था का स्पष्ट दर्शन यह था कि–

– फौज में आज्ञाकारी फौजी तैयार करना।

– खानों में खुदाई करने वाले आज्ञाकारी मजदूर पैदा करना।

– सरकार को चलाने के लिए अधीनस्थ लोग तैयार करना।

– इंडस्ट्री को चलाने के लिए अधीनस्थ क्लर्क पैदा करना और

– ऐसे नागरिक तैयार करना जो हर वाद-विषय पर एक जैसा ही सोचें।

आज हमारे आधुनिक इतिहास में दो महत्व के विश्व युद्ध हो गए हैं जो इसी स्कूली व्यवस्था के फलस्वरूप थे। Erich Maria Remarque अपने उत्कृष्ट ग्रंथ All quiet on the western front में बताते हैं कि प्रथम विश्वयुद्ध स्कूली मास्टरों के हथकंडों से संभव हो पाया था और Dietrich Bonhoeffar (जो कि एक विख्यात Protestant theologian हैं) ने कहा कि द्वितीय विश्वयुद्ध स्कूलों की ही देन था।[3]

आज शिक्षा की परिभाषा भी बड़ी सीमित बना दी गई है। केवल स्कूल में जाना, अक्षरज्ञान लेना और डिग्री प्राप्त करना ही शिक्षा है। अगर हमने इतना नहीं किया तो हम अनपढ़, गंवार, जंगली, बेवकूफ और अशिक्षित हैं। आइए देखते हैं कि हम कैसे दूसरों की उंगलियों पर नाचने वाले जोकर बनकर रह जाते हैं। परिवार से शुरू करें तो हमारे मां-बाप देखा-देखी की भावना के कारण यह आकांक्षा करने लगते हैं कि हमारा बेटा या बेटी एक बड़ा डाक्टर या इंजीनियर या अफसर बने (फिर चाहे हम बने ना बने यह दूसरी बात है) लेकिन बचपन से ही हमें क्या बनना है यह तय हो जाता है। हमारा स्कूल यह तय करता है कि हमें क्या और कैसे सीखना है। मीडिया यह तय करता है कि हमें क्या पहनना, क्या खाना और क्या देखना है। हमारा जीवन साथी कौन और कैसा होगा और हमें किस ढंग से जीना है यह तय करता है हमारा समाज। बस हम तो केवल एक कठपुतली ही बनकर रह जाते हैं।

मानव संघर्ष की समझ को भी प्रतिबंधित कर

दिया है। आज जो इंसान ईमानदारी पूर्वक, सृजनात्मकता और अहिंसक रूप से जीने की कोशिश कर रहा है उसे महामूर्ख की उपाधि मिल जाती है और असफल माना जाता है। वही इंसान कामयाब है जो इस भेड़-दौड़ में हर वक्त दूसरों से प्रतिस्पर्धा करे, दूसरे की टांग खींचे और एक अनुशासित, आज्ञाकारी, सुशिक्षित धूर्त बने। अब वर्तमान स्थिति में इस शैक्षिक ढांचे का काम है कि सबकी सोच एक जैसी बनाए, सबको डिग्री के अधीन बनाए और एक ऐसा 'शिक्षित' वर्ग तैयार करे जो हर वक्त दूसरों को शोषित करे और जीवन को केवल उपभोग का साधन मान उपभोगी बनें।

परंतु क्या आज किसी बच्चे से या उसके माता-पिता से यह पूछा जाता है कि उन्हें कैसी शिक्षा चाहिए? क्या उनसे यह पूछा जाता है कि उनकी भाषा, संस्कृति और जीवन मूल्यों को विकसित करने के लिए किस प्रकार की शिक्षा चाहिए? नहीं, क्योंकि शिक्षा कैसी होगी, पाठ्यक्रम क्या होगा, शिक्षा का उद्देश्य क्या होगा यह तय करने का हक केवल UNESCO और World Bank को ही है। NCERT और कुछ गिने-चुने 'शिक्षाविद्' तो केवल इनके कथनों को बिना सोचे-समझे और प्रश्न उठाए अपने कागजों में नकल करते हैं, जैसे डेलोर्स कमिशन—Learning the treasure within के साथ हुआ और कइयों के साथ पहले भी हुआ है।

हमारे दिमाग में हर वक्त तथ्य तथा आंकड़े भरे जा रहे हैं। क्या जानकारी हासिल करने और ज्ञान प्राप्त करने में कोई अंतर है? हमें तो ठीक से जानकारी भी नहीं दी जा रही है। यह शिक्षा हमें अपने आप को एवं हमारे समुदाय को समझने में भी मदद नहीं करती है। आज हमारा हाल यह है कि हम नकल करने वाली मशीन बन गए हैं।

खेद की बात है कि इसी शिक्षा को हम सार्वजनिक बना रहे हैं। यानी अपने ही पैर पर कुल्हाड़ी मार रहे हैं। दयालचंद्र सोनीजी कहते हैं कि 'देश का सौभाग्य है कि यह छद्म शिक्षा अथवा अपशिक्षा अभी तक सार्वजनिक हुई नहीं है और करोड़ों बच्चे ऐसे हैं जो इस मानसिक प्रदूषण रूपी तथाकथित शिक्षा से सुरक्षित बचे हुए हैं। इन बच्चों के माता-पिता बहुत बुद्धिमान हैं क्योंकि वे समझते हैं कि उनके पैतृक व्यवसाय में जमे रहने में ही उनका कल्याण है और स्कूली-कॉलेजी शिक्षा पाकर अपनी जमी हुई जड़ों को उखाड़ कर विस्थापित होने तथा नौकरी के लिए भटकने में कोई सार नहीं है।" शायद यह कथन पढ़कर जो लोग इस ढांचे से मत-आरोपित (brainwashed) हो चुके हैं वे उग्र हो जाएंगे और वास्तविकता से मुंह मोड़ देंगे। ये लोग धरातली वास्तविकता को खुला करने से डरते हैं क्योंकि ऐसा करने से उनकी नौकरी तथा अस्तित्व खतरे में पड़ सकता है। अगर हमें पता पड़ जाए कि कोई हमें जहर पिला रहा है तो कदाचित हमारा पहला कदम यह होगा कि हम जहर पीना बंद करें और मानवीय मूल्यों एवं इंसानियत के नाते यह दूसरा कदम होगा कि कोई और उस जहर को न पीये, उसका ध्यान रखेंगे। परंतु इन मत-आरोपित लोगों का कहना यह है कि हमें यह जहर सबको पिलाना चाहिए और फिर उनसे यह राय लेनी चाहिए कि जहर में और क्या सुधार होना चाहिए या और क्या डाल

सकते हैं ताकि आसानी से हजम हो जाए। यह फैसला मैं आप पर छोड़ता हूं कि अगर आप को पता लगे कि कोई आपको जहर पिला रहा है तो आप क्या करेंगे?

ऐसा नहीं है कि जहां स्कूली व्यवस्था पहुंच नहीं पाई है वहां समस्याएं नहीं हैं। पर अहम् बात यह है कि आज भी उन लोगों की संस्कृति और भाषा बची हुई है, जिनमें अभी भी गुंजाइश है कि कुछ सृजनात्मक चीज़ निकले। सबसे बड़ी बात यह है कि ये लोग आज भी प्रकृति से जुड़े हुए हैं और उसका रक्षण कर रहे हैं। उन लोगों ने ऐसा दुस्साहस नहीं किया है जिससे करोड़ों लोग मरे हों और लाखों लोग विस्थापित हुए हों। उन लोगों की मेहरबानी से ही आज आपको और मुझे दो वक्त की रोटी नसीब हो रही है।

यहां सवाल यह नहीं की स्कूल होना चाहिए या नहीं बल्कि यह है कि हमारी जिंदगी पर स्कूल का क्या असर है? और इसके अलावा ऐसे कौन से स्थानों को ढूंढना होगा जो हमें पूर्ण इंसान बनाए?

"जीवन की डोर किसी और
के हाथों से
इतनी उलझ गई कि
आज हमें यह भी पता नहीं कि
हम हैं क्या..."

चौथा पहलू : नई दिशाओं की ओर

जिस दृष्टि से हम किसी भी चीज को समझने तथा देखने की कोशिश करते हैं उसी दृष्टि पर हमारा कार्य निर्भर होता है। अर्थात् हम यह मान के चलें कि वर्तमान ढांचा असफल है तो हम उसे किसी भी तरह सुधारने (reform) की ही कोशिश करेंगे। परंतु यदि हम यह देखें कि ढांचा तो सफल हुआ है तब हमारे सामने नए ढंग से सोचने और कार्य करने के अलावा कोई और विकल्प नहीं होगा। एक ओर ज्यादातर लोगों का मानना है कि यह ढांचा असफल हो गया है (the system has failed)। क्योंकि उनका कहना है कि आज भी देश में असाक्षरता ज्यादा है, अधिकतर बच्चे स्कूल छोड़ रहे हैं, पाठ्यक्रम बेबुनियादी है और बच्चों पर बस्तों का बोझ है। दूसरी ओर जो इस ढांचे का उद्देश्य था कि सबमें अहंकारी मनोवृत्ति, लालसा, प्रतिस्पर्धा की भावना और वर्गभेद की श्रेणीबद्धता जगाए तो यह साकार हुआ है। जिन जिन लोगों ने इस ढांचे की स्थापना की उन लोगों के सपने सच हुए। यानी इस ढांचे की जीत हुई (the system has succeeded)। आइए देखते हैं सफल और असफल केवल शब्दों का खेल नहीं बल्कि हमारी ओछी सोच का प्रमाण है।

आज एक ऐसा वर्ग खड़ा हो गया है जो बड़े गर्व के साथ अपने विचार दूसरों पर थोप रहा है और जोर-शोर से यह ऐलान कर रहा है कि खत्म कर दो सारी भाषाएं और संस्कृतियों को बस केवल एक ही भाषा हो, एक ही संस्कृति हो, सब लोग एक ही तरह कपड़े पहनें, एक ही तरह के मकान में रहें और एक ही तरह से सोचें। हां पर इस लोकतंत्र में अभी तक एक आजादी तो है कि हमें क्या पीना है: पेप्सी या कोका-कोला, कौन सी गाड़ी लानी है: मारुती या मित्सुबिशी और कौन सा टूथपेस्ट लाना

है: कालगेट या पेप्सोडेंट, यह हम खुद तय कर सकते हैं। अर्थात् हमारा काम तो जो पहले से बनी-बनाई चीज है उसमें से केवल कौन सी खरीदनी या पसंद करनी है वही रहा है, यही पश्चिमी लोकतंत्र की खासियत है।

कई लोग हैं जो इस व्यवस्था को सुधारने (re-form) की बात कर रहे हैं, जैसे कि राजकीय स्तर पर नई पार्टी या पक्ष बनाना चाहिए, सामाजिक स्तर पर कुछ अनौपचारिक और बिन सरकारी संस्थाएं बनानी चाहिए और शैक्षणिक स्तर पर पाठ्यक्रमों में सुधार होना चाहिए इत्यादि। आज कई लोगों का मानना है कि शिक्षा क्रिया आधारित (activity-based), आनंदमय (joyful), और बाल-केंद्रित (child-centered) होनी चाहिए। यह लोग इन खोखले शब्दों का सहारा लेकर इसके पीछे छिप जाते हैं। ऐसी क्रियाएं जिसमें दिमाग का उपयोग न करना पड़े और आंकड़े एवं तथ्य सहज तरीके से दिमाग में भर जाएं। उन क्रियाओं को करने से हमारा बच्चा बुद्धिमान नहीं बल्कि एक तोता ही बन सकता है जो दूसरों की कही बातें दोहराता रहे। तनावग्रस्त और संघर्षपूर्ण वातावरण एवं परिस्थितियों में भी हम सीखते हैं फिर आनंदमय शिक्षा से क्या तात्पर्य है? बाल-केंद्रित शिक्षा होनी चाहिए यानी यह मान लिया गया है कि बच्चा उस मिट्टी की तरह है जिसे जब चाहे, जैसा चाहे वैसा आकार दे सकते हैं। यह तो कड़वी दवाई को मीठी करने वाली बात है जो आसानी से गले से उतर जाए।

गांधी, कृष्णमूर्ति, अरविंद और टैगोर जो फैक्टरी स्कूल के खिलाफ थे, कुछ लोग उनका नाम लेकर आज फैक्टरी स्कूल को यथार्थ साबित करने की कोशिश कर रहे हैं। लेकिन ज्यादातर तथाकथित शिक्षाविद् इनकी दृष्टियों (visions) को समझने में नाकामयाब रहे हैं। आज की परिस्थिति को देख ऐसा लग रहा है कि सुधार नहीं आलोचनात्मक बदलाव (radical transformation) चाहिए। अगर एक पेड़ पूरी तरह से सड़ गया है तो उसकी डालियां या पत्तियां काटने से कैसे काम चलेगा!

विनोबा भावे और जे पी नारायण जैसे लोगों ने कहा था कि अगर परिवर्तन लाना है तो सबसे पहले हमें सारे स्कूल बंद करने होंगे और आज भी कई लोग हैं जो यही कह रहे हैं। वर्तमान में भी कुछ लोग हैं, जो आम जनता के साथ मिलकर कार्यरत हैं जैसे पी.वी. राजगोपाल, जो कहते हैं कि 'आखिरी संभावना है कि तमाम स्कूल, कालेज कुछ वर्ष के लिए बंद रखें और पढ़ाई का संदर्भ आमूल-चूल बदलें। क्योंकि वर्तमान शिक्षा को चलाते हुए जिसमें प्रतिस्पर्धा और जीत की मुख्य धारा है, कोई मौलिक परिवर्तन की उम्मीद करना मूर्खता होगी।'[4] इन लोगों के कहने का यह अर्थ है कि इस मानसिक प्रदूषण में हमारे पास सांस लेने की जगह नहीं है। इसलिए कदाचित् परिवर्तन के लिए यह भी एक तरीका हो सकता है। इसके साथ-साथ हमें और तरीके और प्रक्रियाएं भी ढूंढने होंगे।

जो प्रक्रिया हममें स्वअनुशासन, स्वशिक्षण, स्वावलंबन, स्वाभिमान, आत्मज्ञान, आत्मावलोकन और आत्मबोध को प्रकट और विकसित करे यही स्वराज है और हमारे स्वतंत्रता सेनानी भी इसी स्वराज की बात करते थे।[5] सच्चे स्वराज के लिए हमें विरोध

की (Resistance) पुनर्विचार की (Rethinking), भूलने की (Unlearning), पुनः निर्माण की (Re-generation), नवनिर्माण की (Generation), खोज की (Research) प्रक्रियाएं एक साथ एवं समानांतर करनी होगी।

विरोध की प्रक्रिया

वर्तमान में जो अन्याय, शोषण और अमानवीय कृत्य हो रहे हैं उसका कैसे विरोध करें ? हम बाहरी ताकतों के दबाव का कैसे विरोध करें ? हम उन ताकतों को कैसे चुनौती दें जो हमें मानवीय तरीकों से जीने के लिए रोकती हैं ?

पुनर्विचार की प्रक्रिया

शिक्षा क्या है ? शिक्षित किसे कहेंगे ? अशिक्षित कौन है ? विकास क्या है ? एक अच्छा इंसान किसे कहेंगे ? एक स्वस्थ समाज कैसा होगा ? स्वराज क्या है ? सीखना यानी क्या ?

भूलने की प्रक्रिया

हमारे अमानवीय तरीके से जीने के तौर तरीके को कैसे भुलाया या मिटाया जाए ? हमारी रूढ़िग्रस्त, आत्मप्रवंचनात्मक और ओछी सोच को कैसे खत्म करें ? कैसे हम हमारा अहंकार, भय और दूसरों को दबाने की भावना को भूलें ? हमारी वर्तमान उपनिवेशी सोच जो हमारे दिलो-दिमाग में छाई हुई है उसे कैसे छोड़ें ?

पुन: निर्माण, नवनिर्माण और खोज की प्रक्रिया

हम उन संस्कृतियों को कैसे पुनर्जीवित कर सकते हैं जिनसे सबका पूर्ण विकास हो ? हम ऐसे स्थानों का पुनःनिर्माण कैसे करें जहां पर हमारी सृजनात्मकता, प्रतिभा और हुनर बढ़े ? हमें कौन-सी प्रक्रिया खोजनी होगी जिससे प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे से अपने विचार, अनुभव, संस्कृति का आदान-प्रदान कर सके ? हमें ऐसा क्या करना होगा जिससे एक स्वस्थ समाज-निर्माण की दृष्टि में हर इंसान की सहभागिता हो ?

यह तो प्रारंभ के प्रश्न हैं, जैसे-जैसे हम इनकी गहराई में जाएंगे वैसे-वैसे कुछ और प्रश्न निकल आएंगे। इन प्रश्नों पर सोचने की जिम्मेदारी केवल UNESCO, NCERT और 'विशेषज्ञों' की ही नहीं है बल्कि उन लोगों की भी है जो अपने आप को आजीवन सीखने वाले (lifelong learner) समझते हैं। इन प्रश्नों का कोई एक संपूर्ण सही उत्तर नहीं है। जिस तरह से हमारी जरूरतें, संस्कृति और भाषाओं में भिन्नता है उसी तरह हमें समझना होगा कि इन प्रश्नों का समाधान भी भिन्न ही होगा और होना चाहिए। इसलिए शायद एक ही तरीके का समाधान या एक ही ढांचा बिठाना नासमझी वाली बात होगी।

अब तक आप के मन में कई प्रश्न उठ रहे होंगे। अगर ऐसा नहीं है तो दो बातें हो सकती हैं या तो आप को मेरी बातें पूरी तरह से समझ में आ गई हैं या फिर आप कुछ भी नहीं समझे। हम आज उस मोड़ पर खड़े हैं जहां कुछ लोग यह सोच रहे हैं कि हमें इस उलझन से बाहर आना ही नहीं है। कुछ लोग हैं जिनको यह शंका है कि हम इस परिस्थिति के बाहर निकल ही नहीं सकते और कुछ

लोग ऐसे हैं जो यह कह रहे हैं कि पहले कुछ कमा-धमा लेते हैं और अपनी जड़ें मजबूत कर लेते हैं, जब बूढ़े हो जाएंगे तब सोचेंगे।

लोग कहते हैं कि हम सहमत हैं आपकी बात से
पर क्या करें, सच कहें तो सूली पर चढ़ाया जाता है।

लोग कहते हैं कि कोई गिले-शिकवे नहीं हैं आपकी बात से
पर क्या करें, सच कहें तो, सूली पर चढ़ाया जाता है।

लोग कहते हैं कि
सुन लो आज नसीहत हमारी
सच पर नहीं चलती जीव की गाड़ी
प्रेम, त्याग है सब बकवास
छोड़ दो यह व्यर्थ प्रयास
जाना है हमने जीवन
भेड़-दौड़ में लगाओ अपना मन
जीवन मूल्य तो है दिखावा
नहीं ले सकते उनका सहारा
तो अब 'मानव' का है यह नारा
बरकरार रखें विश्वास हमारा
चाह रखें नए सृजन की
बदल के रख देंगे संसार सारा।

मैं जानता हूं कि मेरे बदलाव लाने के तरीके आपको अटपटे लग रहे होंगे, परंतु हमें अपनी यांत्रिक सोच को विमुक्त करना पड़ेगा और उसे पुनः सशक्त करना होगा। इसके साथ-साथ हमें इन प्रक्रियाओं को शुरू करने के लिए अपनी सृजनात्मकता एवं इंसानियत पर पूर्ण विश्वास रखना होगा।

इस यात्रा का यह अंत नहीं बल्कि शुरुआत है। आज अगर इस पर गहराई से चिंतन के साथ-साथ ठोस कदम नहीं उठाया तो सदियों तक अभिमान से भरी 'शिक्षित' लोगों की आवाज चारों ओर गूंजती रहेगी और हम मूल-प्रश्न से हट जाएंगे। फिर शायद हम सड़े हुए पेड़ की पत्तियां और डालियां ही काटते रह जाएंगे जैसे पिछले 52 सालों से कर रहे हैं।

शिक्षांतर आंदोलन में मैं आप सभी को आमंत्रित करता हूं कि आइए हम सब साथ मिलकर इन प्रक्रियाओं की शरुआत करें।

संदर्भः

1. Machines as the measure of men; Michal Adas, Cornell University Press; 1989

2. The blinded eye; Zfauddin Sardar, et al., Other India Press; 1993

3. Deschooling Our Lives; The public school Nightmare: why fix a system designed to destroy individual thought?; John Taylor Gatto, New Society Publishers, 1996

4. अन्याय और अत्याचार की गहरी जड़ें, पी.वी. राजगोपालः सत्याग्रह मीमांसा जनवरी 2000

5. हिंद स्वराजः गांधीजी, नवजीवन प्रकाशन, 1949